P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-1* ISSUE-12* March- 2017
E: ISSN NO.: 2455-0817 *Remarking An Analisation*

'निर्मला' उपन्यास की नायिका : एक विश्लेषण

सारांश

हिन्दी कथा–साहित्य की परम्परा में मुंशी प्रेमचन्द की भूमिका युगान्तरकारी रही है। कल्पनाओं से भरे ऐय्यारी और जासूसी–तिलस्मी उपन्यासों की प्रधानता के बीच पहली बार उन्होंने ही दलित, शोषित और उत्पीड़ित मनुष्यता की व्यथा–कथा को पूरे नैतिक बल के साथ सशक्त अभिव्यक्ति दी। गरीब, किसान, मज़दूर और नारी– प्रेमचन्द की गहन मानवीय संवेदना के प्रमुख आकर्षण रहे हैं। नारी की अमानवीय जीवन–स्थितियों को उन्होंने अपने उपन्यासों में बार–बार अभिव्यक्त किया है। नारी की सामाजिक परिधि को विस्तृत कर उसे नव्य चेतना से अनुप्राणित किया है। 'निर्मला' भी उनका एक ऐसा ही उपन्यास है जिसके माध्यम से भारतीय नारी की दुरावस्था के विभिन्न आयामों को अभिव्यक्ति प्रदान की गई है। हालांकि इस उपन्यास की नायिका निर्मला क्रान्ति एवं विद्रोह का झंडा लेकर चलने वाली आधुनिक नारी के रूप में चित्रित नहीं की गई है लेकिन उसकी व्यथा को अतिरंजित रूप दे कर प्रेमचन्द अपने युग की सहमी–दुबकी नारी को संघर्ष से जूझने की प्रेरणा देते प्रतीत होते हैं।

मुख्य शब्द : वज्रपात, मुस्तैदी, वितृष्णा, शिद्दत, स्वीकारोक्ति, केयरटेकर

पूनम काजल
असिस्टेंट प्रोफेसर,
हिन्दी विभाग,
हिन्दू कन्या महाविद्यालय,
जींद, हरियाणा

प्रस्तावना

'निर्मला' उपन्यास में प्रेमचन्द ने नायिका निर्मला की व्यथा–कथा को मार्मिक रूप में प्रस्तुत किया है। निर्मला के माध्यम से उन्होंने दहेज प्रथा, अनमेल विवाह, वृद्ध विवाह आदि कुप्रथाओं को एक सामाजिक अभिशाप के रूप में प्रस्तुत किया है। यद्यपि लेखक ने समस्या का कोई स्पष्ट समाधान प्रस्तुत नहीं किया, फिर भी निर्मला की त्रासदी के द्वारा, उसके करुण जीवन और दाम्पत्य के तीखे, मार्मिक पक्षों के चित्रण के माध्यम से पाठक में करुणा जगाकर, उसे चेतन करने का भरसक प्रयास प्रेमचन्द जी ने किया है। इस सम्बन्ध में स्व. नित्यानन्द पटेल लिखते हैं – 'दहेज की कुरीति के सामने 'निर्मला' उपन्यास ने दर्पण रखकर, उसके कुत्सित रूप एवं दुष्परिणामों को विशाल रूप में दिखाकर हमारी आँखें खोली हैं।'[1]

'निर्मला' के चरित्र का विश्लेषण करते हुए हमें मुख्यतया उसके जीवन में आने वाले तीन महत्वपूर्ण मोड़ दिखाई देते हैं जो उसकी स्थिति को करुण से करुणतर बनाते चलते हैं। प्रेमचन्द ने इतने विस्यमकारी ढंग से इन मोड़ों का कथा में आयोजन किया है कि उनकी आकस्मिकता को लेकर पाठक अचम्भित रह जाता है। सर्वप्रथम, वह सोलह वर्षीय किशोरी के रूप में दिखाई गई है। उसके पिता वकील उदयभानुलाल ने भालचन्द्र सिन्हा के डॉक्टर पुत्र भुवनमोहन सिन्हा के साथ उसका सम्बन्ध ठहरा कर स्वयं गंगा–स्नान की तैयारी कर ली है, लेकिन परिस्थितियाँ प्रत्यक्षतः निर्मला के परिवार पर और परोक्षतः उसके समूचे भविष्य पर वज्रपात करती हुई बड़े ही आकस्मिक ढंग से उसके पिता की हत्या का कारण बनती हैं। यहीं से शुरू होती है निर्मला के भविष्य के बदरंग होते चले जाने की कथा, जो सबसे पहले वांछित दहेज न जुटा पाने के कारण विवाह–सम्बन्ध टूटने में लक्षित होती है और बाद में 35 वर्षीय अधेड़ विधुर मुंशी तोताराम के साथ परिणय–सूत्र में बँधने में। यह पहली अवस्था निर्मला के माध्यम से एक सामान्य नारी की असहाय अवस्था को रेखांकित करती है। निर्मला अपनी माँ की नज़रों में जीवित प्राणी नहीं, किसी के भी खूंटे से बाँध दी जाने वाली गाय है और इस प्रक्रिया को विवाह का नाम देकर वह सामाजिक, धार्मिक दायित्व पूर्ण करने का सन्तोष–लाभ कर लेती है। परम्परा से आयातित संस्कारों की छाया में पलकर स्वयं निर्मला भी अपनी भविष्यहीनता से परिचित है। वह विद्रोह करे भी तो किससे? किस आधार पर, जबकि वह जानती है– 'हम लड़कियाँ हैं, हमारा घर कहीं नहीं होता।'[2]

मुंशी तोताराम के साथ विवाह करना उसे स्वीकार्य नहीं, लेकिन प्रतिरोध का मार्ग भी तो नहीं। कसाई के हाथों सौंपी जा रही गाय की तरह वह

मूक भाव से धार्मिक अनुष्ठान के नाम पर किए जा रहे बर्बर शोषण का शिकार होती है। प्रेमचन्द लिखते हैं – '... ....अपराधी जैसे दंड की प्रतीक्षा करता है, उसी भाँति वह विवाह की प्रतीक्षा करती थी, उस विवाह की, जिसमें उसके जीवन की सारी अभिलाषाएँ विलीन हो जाएँगी..... ।'[3]

निर्मला अपनी और अपनी पूरी कौम की स्थिति से भली–भाँति परिचित है कि औरत एक निर्जीव वस्तु होती है – पुरुष के उपभोग, उपयोग की वस्तु। इसलिए पतिगृह आकर एक 'वस्तु' के रूप में अपने समस्त अरमानों का गला घोंटकर वह अपने दायित्वों की पूर्ति में लग जाती है। मुंशी जी रुपया–पैसा उसके हाथ में सौंपते हैं तो बड़ी मुस्तैदी से वह खजांची की भूमिका निभाती है – एक–एक पाई का हिसाब रखते हुए। यहाँ निर्मला के चरित्र में एक ऐसी भारतीय नारी प्रतिबिम्बित होती है जो अपने दायित्वों के बोझ तले दबी एक कुशल 'केयरटेकर' की भूमिका का सफलतापूर्वक निर्वाह करती है। स्त्री का जीवनपर्यन्त पिता, पति और पुत्र के अधीन रहने का संस्कार निर्मला के व्यक्तित्व पर पूरी तरह हावी दिखाई देता है मानो जागरुकता का एक झोंका तक वहाँ प्रवेश नहीं कर सकता।

लेकिन प्रेमचन्द इतने हृदयहीन नहीं। संस्कारों का बोझा ढोते–ढोते नारी पशु के समान मूक एवं विवेकहीन हो गई है, लेकिन भीतर–ही–भीतर मन को मथ डालने वाली अन्तर्द्वन्द्वजनित पीड़ा क्या स्वयं उससे छुप सकती है? इसलिए मुस्तैदी से गृहिणी के दायित्व निभाती हुई निर्मला का जब–तब घृणा से सर्वांग झुलस उठता है, जब–तब आइने में अपने रूप–सौन्दर्य को निहारकर वह अपने फूटे भाग्य को श्राप दिया करती है और लज्जा से, अपमान से भर कर वह तोताराम के सामने से अदृश्य हो जाने की मनौतियाँ मनाया करती है – '..... मैं इनकी सेवा कर सकती हूँ, सम्मान कर सकती हूँ, अपना जीवन इनके चरणों में अर्पण कर सकती हूँ, लेकिन वह नहीं कर सकती जो मेरे किए नहीं हो सकता।'[4]

मुंशी जी के साथ दाम्पत्य–रस भोगना उसे नहीं सुहाता। बेशक आयु दोनों के बीच आड़े आती है और किशोरी निर्मला मुंशी जी में अपने पिता की प्रतिच्छवि देख लिया करती है, लेकिन पति में पिता का अक़्स देखकर परांगमुख होना मुख्य बात नहीं, मुख्य बात है इस बात का अहसास कि माँ की गरीबी ने, क्रूर सामाजिक विधान ने, पुरुष की कामुक प्रवृत्ति ने उसके नैसर्गिक अधिकारों का हनन किया है। अपने हमउम्र के साथ विवाह करने से वंचित कर दिए जाने की पीड़ा घृणा एवं वितृष्णा बन कर उसके व मुंशी जी के बीच पसर जाती है। इसलिए दम्पत्ति–विज्ञान में कुशल मुंशी जी की प्रत्येक कामलोलुप भंगिमा निर्मला की घृणा को और अधिक गहरा देती है – 'वही बातें, जिन्हें किसी युवक के मुँह से सुनकर उसका हृदय प्रेम से उन्मत्त हो जाता, वकील साहब के मुँह से निकलकर उसके हृदय पर शर समान आघात करती थीं.... . ।'[5]

यह एक ऐसा स्थल है, जहाँ अपनी स्वाभाविक तृष्णाओं एवं माँगों के साथ निर्मला व्यक्ति–रूप में हमारे सामने आती है। यही एक ऐसा स्थल है, जहाँ एक सजीव प्राणी की ऊष्मा से युक्त होकर वह अपने स्वतन्त्र अस्तित्व और शख़्सियत को प्रमाणित कर सकती है, लेकिन निर्मला ऐसी किसी भी संभावना से इंकार करती है। निर्मला नहीं, बल्कि उसकी चतुर्दिक परिस्थितियाँ, उसकी परवशता उसे समझौतावादी दृष्टिकोण अपनाने के लिए विवश कर देती हैं। मुंशी जी की कामुक चेष्टाओं ने जहाँ उसे उनसे विरक्त किया था, वहीं उनकी छैला और जवाँमर्द बनने की बचकानी कोशिशों ने उन्हें मसखरा बना दिया है। निर्मला उन्हें देखती है तो दया से अभिभूत हो जाती है – पागल के प्रति दर्शायी जाने वाली दया से। इसलिए उसके हृदय में स्थित क्रोध और घृणा का भाव जाता रहा – 'क्रोध और घृणा उन पर होती है जो अपने होश में हो.... वह बात–बात में उनकी चुटकियाँ लेती, उनका मजाक उड़ाती, जैसे लोग पागलों के साथ किया करते हैं।'[6]

मुंशी जी की कायाकल्प की इन कोशिशों पर जब निर्मला गहराई से विचार करती है तो जैसे अकस्मात् उनका अर्थ उसके सामने प्रत्यक्ष हो जाता है। उसी दिन से निर्मला अपना रंग–ढंग बदलकर पति की अंकशायिनी बनने को प्रस्तुत हो जाती है। निर्मला के इस कायाकल्प पर मुंशी जी बेहद प्रसन्न हैं, लेकिन निर्मला के लिए यह तपस्या है, एक पतिपरायणा भारतीय नारी के हिस्से पड़ी साधना का एक अंश – '..... संसार में सबके सब प्राणी सुख–सेज ही पर तो नहीं सोते? मैं भी उन्हीं अभागों में हूँ। मुझे भी विधाता ने दुःख की गठरी ढोने के लिए चुना है..... ।'[7]

भारतीय नारी जन्म से ही माँ होती है। त्याग, दया, ममता, करुणा आदि सद्गुणों को उसके अन्तर्मन में इस कदर ठूँस–ठूँसकर भर दिया जाता है कि उसकी बाल्यावस्था असमय ही प्रौढ़ावस्था में परिवर्तित हो जाती है। निर्मला इसका अपवाद नहीं। दायित्व–पूर्ति की सतर्कता के साथ–साथ निर्मला का प्रणय अतृप्त मन अवलम्ब के रूप में मुंशी जी की सन्तानों की देखभाल करके मातृत्व से परितृप्त होने का उपक्रम करने लगता है, लेकिन निर्मला माँ नहीं, सौतेली माँ है जो समाज की नज़रों में हमेशा कुमाता ही रहेगी। सौतेली माँ के रूप में निर्मला को बार–बार अपयश की भागी बनाकर मानो लेखक उसके जीवन की तीसरी करुण अवस्था उद्घाटित करना चाहते हैं। मुंशी तोताराम द्वारा परिवार के विघटन के लिए निर्मला को जिम्मेदार ठहराना निर्मला की बेचारगी को सभी कोणों से उभार देता है – '.... आज से छः साल पहले क्या इस घर की यही दशा थी? तुमने मेरा बना–बनाया घर बिगाड़ दिया, तुमने मेरे लहलहाते बाग को उजाड़ दिया। केवल एक ठूँठ रह गया है। उसका निशान मिटाकर तभी तुम्हें संतोष होगा। मैं अपना सर्वनाश करने के लिए तुम्हें अपने घर नहीं लाया था।'[8]

इस तरह के अनेक आरोपों–प्रत्यारोपों से घिरी, घटनाओं के मकड़जाल में उलझी वह इतनी व्यथित है कि अब दर्द ही उसके लिए दवा बन गया है। कर्त्तव्य की वेदी पर, अपना जीवन और अपनी कल्पनाएँ होम करके भी निर्मला मानसिक शांति नहीं पा सकी है। मुंशी जी की निर्लज्जता के मारे उनके पुत्रों के साथ निर्मला के सम्बन्ध सहज नहीं रह पाते। दूसरी ओर, यह अपराधबोध उसकी आत्मपीड़ा को और भी बढ़ा देता है कि यदि वह सौतेली

माँ बनकर इस घर में न आती, तो इस घर का बड़ा पुत्र मंसाराम कभी बेघर न होता। यह एक ऐसा कटु सत्य है जो निर्मला को बेचैन कर देता है। वह मंसाराम की रक्षा करने के लिए विकल है, संकोच और लज्जा की चादर फेंकने को व्यग्र है। हालांकि, लेखक ने निर्मला ही संकल्पदृढ़ता को क्षणिक आवेश का परिणाम माना है – 'बड़े–बड़े महान संकल्प आवेश में ही जन्म लेते हैं।'[9]

लेकिन यह टिप्पणी पूर्णतया सत्य नहीं। निर्मला की निर्भीक स्वीकारोक्ति एवं गहन अन्तर्द्वन्द्व के आलोक में उसके चरित्र का ग्राफ बनाते समय यह बात शिद्दत से महसूस की जा सकती है कि वह आद्यन्त 'चीज़' नहीं बनी रही है। 'व्यक्ति' में तबदील हो जाने की चेतन प्रक्रिया से वह गुजरती रहती है। प्रेमचन्द लिखते हैं – '..... कहाँ तो निर्मला भय से सूखी जाती थी, कहाँ उसके मुँह पर दृढ़ संकल्प की आभा झलक पड़ी। उसने अपनी देह का ताज़ा खून देने का निश्चय कर लिया ..... अब जिसका जो जी चाहे समझे, वह कुछ परवाह न करेगी।'[10]

मुंशी जी के विरोध, ईर्ष्या, सन्देह और क्रोध की परवाह न करते हुए वह मंसाराम की प्राण–रक्षा के लिए अस्पताल जाती है – एक दीन–हीन अबला के रूप में नहीं, वरन् वात्सल्य से दीप्त माँ के रूप में, जो संतान के लिए ज़माने की हर प्रतिकूलता से टकराने को तैयार है। 'तुम क्यों आई हो?'–तोताराम का यह प्रश्न उसे आहत नहीं करता, दृढ़तापूर्वक अगला कदम उठाने की प्रेरणा देता है। प्रश्न का उत्तर देने के स्थान पर वह मुंशी जी से निःशंक भाव से प्रश्न पूछती है – 'आप यहाँ क्या करने आए हैं?'

इस प्रकार निर्मला को प्रेमचन्द ने औसत भारतीय नारी के रूप में चित्रित किया है जो अपनी संस्कारग्रस्तता, आर्थिक परनिर्भरता, अशिक्षा और मानसिक दौर्बल्य के कारण चाह कर भी कुछ नहीं कर सकती, फिर भी अपनी अन्तरात्मा की आवाज सुन कर जब कभी वह विद्रोह की पुकार करती है या अपनी छटपटाहट व्यक्त करती है, वहाँ वह जीवन्त व्यक्ति के रूप में दिखाई पड़ती है।

उद्देश्य

'निर्मला' उपन्यास में प्रेमचन्द ने भारत की निरीह, अबला नारी को केन्द्र में रखकर उसकी अमानवीय जीवन–स्थितियों को उद्घाटित करने का भरसक प्रयत्न किया है। दहेज प्रथा व अनमेल विवाह के दुष्परिणामों के रूप में निर्मला की असमय मृत्यु दर्शाकर प्रेमचन्द इस पुरानी, जड़ और परम्परागत विचारधारा के सम्मुख बड़ा–सा प्रश्नचिह्न लगा कर नए पथ की ओर इंगित करते हैं। वे यह सन्देश जन–जन तक पहुँचाना चाहते हैं कि परिवार के परम्परावादी दृष्टिकोण और जड़ सामाजिक परम्पराओं के कारण ही नारी–जीवन को अनेकानेक कटु अनुभवों से गुजरना पड़ता है। निर्मला और मुंशी तोताराम के वैवाहिक सम्बन्धों की त्रासदी दिखाकर प्रेमचन्द अभिभावकों को कदाचित यही कहना चाहते हैं –'..... हमें अपनी लड़कियों की इच्छा के विरुद्ध केवल रूढ़ियों का पालन करने के लिए और खानदान की नाक कटने के भय से कन्या को किसी कुपात्र के गले नहीं मढ़ना चाहिए।'[11]

उपसंहार

'निर्मला' नारी–जीवन का एक करूणतम अध्याय है, जिसे उलटने के उपरान्त प्रेमचन्द एक सन्देशवाहक के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं, एक स्वस्थ समाज रचने के लिए पाठक का आह्वान करते प्रतीत होते हैं। लेखक इस बात को प्रतिपादित करना चाहते हैं कि विवाह मात्र धार्मिक संस्कार नहीं, न ही सामाजिक बाध्यता है और न ही काम पूर्ति की वैध स्वीकृति। विवाह आत्म–विकास का ज़रिया है, सम्बन्धों के महत्व और गरिमा को पहचानने का माध्यम है, अपनी भावनाओं और दायित्वों का प्रसार है। हालांकि प्रेमचन्द समस्या का कोई समाधान प्रस्तुत नहीं करते, फिर भी त्रासदी की भीषणता का अनुमान तो पाठक–वर्ग लगा ही सकता है। यह प्रेमचन्द की दूर दृष्टि का ही परिणाम है कि कालान्तर में नारी हितों की रक्षा के लिए जो कानून बने, उनकी पूर्व छाया हमें उनके 'साहित्य' में दृष्टिगोचर होती है। निःसंकोच प्रेमचन्द को भारतीय नवजागरण के उन अग्रगण्य सुधारकों की परम्परा में रखा जा सकता है जिनकी शुरूआत राजा राममोहन राय और विद्यासागर जी जैसी महान् विभूतियों से होती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *स्व. नित्यानन्द पटेल, प्रेमचन्द के उपन्यास–साहित्य में सांस्कृतिक चेतना, पृ. 248*
2. *प्रेमचन्द, निर्मला पृ. 5*
3. *वही, पृ. 116*
4. *वही, पृ. 48*
5. *वही, पृ. 37*
6. *वही, पृ. 46*
7. *वही, पृ. 49*
8. *वही, पृ. 163*
9. *वही, पृ. 95*
10. *वही, पृ. 95–96*
11. *प्रेमचन्द, विविध प्रसंग, भाग–3, एक दुःखी बाप, पृ. 260*